

ओ३म्

महर्षि दयानन्द - वेदभाष्य की प्रमाणिकता की पुष्टि एवं मेरी वेदभाष्य शैली

यजुर्वेद 25.7 का त्रिविध भाष्य एवं भ्रान्ति निवारण

अभी कार्तिक शुक्ला १२/२०७४ वि.सं. 01/11/2017 को आर्य जगत् के बहुश्रुत युवा विद्वान् आचार्य सनत्कुमार जी मेरे पास मिलने आये। उन्होंने मुझे अवगत कराया कि यजुर्वेद अध्याय 25 मंत्र 7 के ऋषि दयानन्द भाष्य पर कुछ स्वाध्यायशील परन्तु छिद्रान्वेषी मुस्लिम युवकों ने तीक्ष्ण व्यंग्य किये हैं। अनेक आर्य विद्वान् उनका उत्तर देने के लिए उत्साहपूर्वक आगे बढ़े परन्तु ऋषिकृत भाष्य को वे समझ नहीं पाये और हार मानकर बैठ गये। निश्चित ही आर्य समाज के लिए यह विचारणीय बात है। उन्होंने मुझे इस मंत्र का अर्थ स्पष्ट करने का आग्रह किया। मैंने उस मंत्र के भाष्य एवं हिन्दी भाषा में किये पदार्थ को देखा। यह भाष्य सहसा ही किसी भी विद्वान् को उलझन में डालने वाला है। इस विषय में मेरा मत है कि महर्षि दयानन्द के भाष्य का हिन्दी भाग उनका स्वयं का नहीं है, बल्कि उनके लेखक पण्डितों का बनाया हुआ है। इस मंत्र का हिन्दी भाग देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह संस्कृत भाग के अनुसार ही है परन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ। वस्तुतः समयाभाव के कारण ऋषि अपने मन के अनुकूल भाष्य नहीं कर सके किन्तु हिन्दी अनुवादकों से अपेक्षा थी कि वे उनके भावों को यथार्थ रूप में समझकर पदार्थ लिखते। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। वेदार्थ एवं इस विषय में ऋषि की दृष्टि से अनभिज्ञ संस्कृत विद्वान् हिन्दी पदार्थ देखकर ऋषि भाष्य पर आक्षेप करते हैं। इस विषय में आर्य समाज की सभाओं का दायित्व है कि समर्थ विद्वानों से इस समस्या का समाधान करवाने का प्रयास करें। जिस मंत्र की ओर संकेत किया गया है, वह इस प्रकार है-

पूषणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः । निचृदष्टिशब्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्यूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विहृतं आन्त्रैरपो
वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनश् शेषेन प्रजाथं रेतसा चाषान् पित्तेन
प्रदरान् पायुनां कूशमान्छकपिण्डैः ॥ ७ ॥

इसका ऋषिकृत भाष्य इस प्रकार है-

पूषणम् । वनिष्ठुना । अन्धाहीनित्यन्धऽअहीन् । स्थूलगुदयेति स्थूलऽगुदया ।
सर्पान् । गुदाभिः । विहृत इति विऽहृतः । आन्त्रैः । अपः । वस्तिना । वृषणम् ।
आण्डाभ्याम् । वाजिनम् । शेपेन । प्रजामिति प्रऽजाम् । रेतसा । चाषान् ।
पित्तेन । प्रदरानिति प्रऽदरान् । पायुना । कूशमान् । शकपिण्डैरिति शकऽपिण्डैः

॥ ७ ॥

पदार्थः—(पूषणम्) पुष्टिकरम् (वनिष्ठुना) याचनेन (अन्धाहीन्) अन्धान्
सर्पान् (स्थूलगुदया) स्थूलया गुदया सह (सर्पान्) (गुदाभिः) (विहृतः) विशेषण
कुटिलान् (आन्त्रैः) उदरस्थैर्नाडीविशेषैः (अपः) जलानि (वस्तिना) नाभेरधोभागेन
(वृषणम्) वीर्याधारम् (आण्डाभ्याम्) अण्डाकाराभ्यां वृषणावयवाभ्याम् (वाजिनम्)
अश्वम् (शेपेन) लिङ्गेन (प्रजाम्) सन्ततिम् (रेतसा) वीर्येण (चाषान्) भक्षणानि
(पित्तेन) (प्रदरान्) उदरावयवान् (पायुना) एतदिन्द्रियेण (कूशमान्) शासनानि ।
अत्र कशघातोर्मकप्रत्ययोऽन्येषामपीति दीर्घश्च (शकपिण्डैः) शक्तेः संघातैः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं वनिष्ठुना पूषणं स्थूलगुदया सह वर्तमानानन्धाहीन्
गुदाभिः सहितान् विहृतः सर्पानान्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनं शेपेन रेतसा
प्रजां पित्तेन चाषान् प्रदरान् पायुना शकपिण्डैः कूशमान् निगृह्णीत ॥ ७ ॥

भावार्थः—येन येन यद्यत्कार्यं सिद्ध्येत्तेन तेनाङ्गेन पदार्थेन वा तत्तत्साधनीयम्

उपलब्ध हिन्दी अनुवाद-

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तুম (वनिष्ठुना) मांमने से (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को
(स्थूलगुदया) स्थूल गुदेन्द्रिय के साथ वर्तमान (अन्धाहीन्) अन्धे सांपों को (गुदाभिः)
गुदेन्द्रियों के साथ वर्तमान (विहृतः) विशेष कुटिल (सर्पान्) सर्पों को (आन्त्रैः) आंतों से
(अपः) जलों को (वस्तिना) नाभि के नीचे के भाग से (वृषणम्) अण्डकोष को
(आण्डाभ्याम्) अण्डों से (वाजिनम्) घोड़ा को (शेपेन) लिङ्ग और (रेतसा) वीर्य से
(प्रजाम्) सन्तान को (पित्तेन) पित्त से (चाषान्) भोजनों को (प्रदरान्) पेट के अंगों
को (पायुना) गुदेन्द्रिय से और (शकपिण्डैः) शक्तियों से (कूशमान्) शिखावटों को निरन्तर
लेओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—जिस जिस से जो जो काम सिद्ध हो उस उस अङ्ग वा पदार्थ से वह वह काम
सिद्ध करना चाहिये ॥ ७ ॥

निश्चित ही यह हिन्दी पदार्थ उपयुक्त व स्पष्ट नहीं है। मैं ऋषि के भाष्य का हिन्दी में व्याख्यान करता हूँ-

हे मनुष्यो! (वनिष्ठुना) याचन अर्थात् ग्रहण करने की इच्छा तथा नष्ट करने की प्रवृत्ति, {याचु वधकर्मा - निघं. २.१६} इन दोनों ही प्रकार के कर्मों से (पूषणम्) पुष्टि करण की क्रिया सम्यक् प्रकार से होती है। ध्यातव्य है कि शरीर एवं ब्रह्माण्ड दोनों में संयोग व वियोग किंवा सृजन वा विनाश दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां साथ-२ चलती हैं। इनमें से एक के अभाव में ही सृष्टि प्रक्रिया समाप्त हो जायेगी। यहाँ महर्षि के 'याचनेन' पद के दोनों अर्थ ग्रहण करने चाहिए। यहाँ कोई 'याचनेन' पद से दोनों अर्थों का ग्रहण न करे, उसे 'वनिष्ठुना' पद 'वनु याचने' तथा 'वनु संभक्तौ' इन दोनों धातुओं से व्युत्पन्न मानना चाहिए। तब भी ये दोनों अर्थ यहाँ निकलते हैं।



(स्थूलगुदया) स्थूल गुदा किंवा पुच्छभाग के द्वारा (अन्धाहीन्) अन्धे सर्प अपने क्रियाओं को करने में समर्थ होते हैं। हम अन्तर्जाल से जान सकते हैं कि जो सांप अंधे होते हैं, उनकी पूंछ मुख के समान मोटी होती है। वहीं गुदा भी होती है। उसी स्थूल गुदा से ही वह सांप अण्डा देता है। इसी कारण गुदा स्थूल होती है। **Brahminy Blind Snake** केवल मादा ही होती है। इनमें नर नहीं देखा गया है। इस कारण यह स्वयं ही बिना किसी नर के संयोग के गुदा से अण्डे देती है। इसी कारण कहा है कि स्थूल गुदा द्वारा अन्धे सर्प अपने कर्मों को करने में समर्थ होते हैं।

(गुदाभिः) गुदा वा पुच्छभाग के द्वारा (विद्धुतः) विशेष रूप से टेढ़े मेढ़े गति करने वाले सर्प अपनी गत्यादि क्रियाओं को सम्यग्रूपेण करने में समर्थ होते हैं। यहाँ 'विद्धुतः' शब्द से शाकल सांप का ग्रहण किया जा सकता है। यह सर्प अपनी पूंछ वा गुदा भाग को मुख में दबाकर गोल घेरे के समान आकृति धारण करके पहिये के समान गति करता है। इस सर्प को अंग्रेजी भाषा में **Hoop Snake** कहते हैं। इस प्रकार के सर्प के विषय में वैज्ञानिकों को शंका है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी एक स्थान पर इस प्रकार के सर्प की चर्चा है। आचार्य सायण ने भी अपने ऐतरेय ब्राह्मण के भाष्य में इस सर्प की चर्चा की है। सम्भव है कि यह प्रजाति अब विलुप्त हो गयी हो। कई सर्प पूंछ को हिलाकर अपने शिकार को आकर्षित करके उन्हें पकड़ लेते हैं। यहाँ भी गुदा वा पूंछ की भूमिका है। यहाँ गति के स्थान पर शिकार करने में भूमिका है। इस कारण गुदा के द्वारा इनके क्रियाशील रहने वा सम्यक् क्रिया करने की चर्चा की गयी है।



(सर्पान्) अन्य प्रकार के सांप (आन्त्रैः) उदरस्थ नाड़ी {अमति जानाति प्राप्नोति येन तत् अन्त्रम् (उ.को. ४.१६५)} अर्थात् सर्प शरीर के ऊपर उभरे शल्कों के द्वारा ही गति करते हैं किंवा उसके शरीर में पाई जाने वाली हजारों मांसपेशियों रूपी नाड़ियों के द्वारा ही वह अपने सभी कर्मों को करने में समर्थ होता है।

(अपः) किसी भी प्राणी के शरीर का एक महत्वपूर्ण एवं सबसे बड़ा घटक जल (वस्तिना) नाभि के निचले भाग में स्थित अंगों विशेषकर मूत्र उत्सर्जन तन्त्र के द्वारा ही शरीर में सम्यक् क्रियाएं कर पाता है। आयुर्विज्ञानी इस पर विशेष विचार कर सकते हैं कि बहुमूत्र वा मूत्रकृच्छ्र रोग में शरीर में विद्यमान जल अपने कर्मों को सम्यक् रूप से कर पाने में कैसे असमर्थ होता है?

(वृषणम्) नर प्राणी के अण्डकोष (आण्डाभ्याम्) अपने अवयव रूप अण्डों के सम्यक् क्रियाशील व बलवान् रहने पर ही शुक्र निर्माणादि कर्मों को सम्यक् प्रकार से करने में समर्थ हो सकते हैं। उनमें दोष उपस्थित होने पर सम्पूर्ण अण्डकोष का कार्य सर्वथा बंद हो जाता है।

(वाजिनम्) घोड़े, बैल आदि बलवान् पशु (शेपेन) अपने लिंग के द्वारा विशेष बल व गति से युक्त होते हैं। जिन घोड़ों को नपुंसक बना दिया जाता है, उनके बल व गति दोनों ही हीन हो जाते हैं। उनकी क्रियाशीलता में न्यूनता आ जाती है। यही अंग उनके बल-पौरुष का मुख्य आधार वा साधन है। इसी कारण इस अंग की चर्चा की गयी है।

(प्रजाम्) विभिन्न प्राणियों की सन्तान (रेतसा) अपने पिता व माता के रेतः अर्थात् शुक्र व रज के समर्थ होने पर ही सामर्थ्यवती होती है। शुक्र व रज के संयोग के बिना प्रजा का उत्पन्न होना ही असम्भव है और उनके निर्बल होने पर सन्तान भी निर्बल ही होगी।

(चाषान्) विभिन्न खाद्य पदार्थ (पित्तेन) आहार नाल में मिलने वाले पित्त आदि विभिन्न पाचक रसों के द्वारा ही अपना प्रभाव सम्यक् रूप से दर्शा सकते हैं। इसका तात्पर्य है कि इन पाचक रसों के अभाव में खाद्य पदार्थ न केवल शरीर को पोषण नहीं दे सकते हैं अपितु उस प्राणी को रोगी भी बना देते हैं।

(प्रदरान्) शरीर के अन्दर विशेषकर उदर में विद्यमान विभिन्न अवयव (पायुना) गुदा-इन्द्रिय के सम्यक् कार्यशील रहने पर ही अपने अपने कार्य सम्यग्रूपेण करने में सक्षम होते हैं। जब मनुष्य व अन्य किसी भी प्राणी को कोष्ठबद्धता, अतिसार किंवा अर्श-भगन्दर जैसा कोई रोग हो जाये, तब उस मनुष्य के पाचनतंत्र के अन्य अवयव यथा आमाशय, गृहणी, दोनों प्रकार की आंतें, यकृत, प्लीहा व अग्नाशयादि अंग भी प्रभावित होते हैं अर्थात् वे भी सम्यग्रूपेण अपने-२ कार्य नहीं कर पाते हैं।

(कूश्मान्) मस्तिष्क एवं इससे संचालित सभी अंग-प्रत्यंगों की नियन्त्रण व संचालन क्षमता (शकपिण्डैः) मस्तिष्क एवं उससे संचालित अंग-प्रत्यंगों की शक्ति के सम्यक् संतुलन के द्वारा ही सम्यग्रूपेण कार्य कर पाती है।

इस मंत्र में इसी अध्याय के प्रथम मंत्र से 'स्वाहा' पद की अनुवृत्ति समझनी चाहिए। इसी से हमने सम्यक् क्रिया करने का भाव ग्रहण किया है।

भावार्थ- हे मनुष्यो! सृष्टि में संयोग-वियोग के गुण के द्वारा विभिन्न क्रियाओं व पदार्थों की रक्षा व पालन, अंधे सांपों का पुच्छ वा गुदा भाग से अंडे देना वा इसके सहयोग से शाकल सांप चलने का, सभी सांपों का मांसपेशियों के द्वारा होने वाले कर्मों, शरीर में मूत्र विसर्जन की सम्यक् क्रिया के द्वारा शरीर में जल का सम्यक् कार्यशील रहना, अण्डकोषों में अवयवभूत अण्डों के स्वस्थ होने पर ही अण्डकोषों का समर्थ होना, पौरुष शक्ति सम्पन्न घोड़े आदि का बलवान् प्राणी का बलवान् रह पाना, शुक्र व रज की शुद्धता व स्वास्थ्य से ही स्वस्थ प्रजा का उत्पन्न होना, पित्त आदि पाचक रसों के द्वारा भोजन का पचना, मलादि विसर्जन की सम्यक् क्रिया के द्वारा शरीरांगों का स्वस्थ रह पाना एवं

मस्तिष्कगत स्नायुओं के स्वस्थ व सबल रहने पर ही शरीर में अन्य अंगों का सम्यक् नियन्त्रण व संचालन आदि कर्म होते हैं, ऐसा तुम लोग जानो।

इस मंत्र पर मेरा द्विविध भाष्य

{प्रजापतिः - प्राणो हि प्रजापतिः (शत.४.५.५.१३), प्रजापतिर्ह्यात्मा (शत. ६.२.२.१२)। सर्वाणि छन्दांसि प्रजापतिः (शत. ६.२.१.१०)। पूषा = पुष्टिर्वै पूषा (तै.ब्रा.२.७.२.१), असौ वै पूषा योऽसौ (सूर्यः) तपति (कौ.५.२), अन्नं वै पूषा (कौ.१२.८), पशवो वै पूषा (शत. १३.१.८.६) इयं पृथिवी वै पूषा (मै.२.५.५)}

इस ऋचा का ऋषि प्रजापति है। इसका तात्पर्य है कि इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति सभी प्रकार की अन्य छन्द रश्मियों में कार्यरत प्राण व सूत्रात्मा वायु के मेल से होती है। इसका देवता पूषा होने से इसके दैवत प्रभाव से विभिन्न प्रकाशित व अप्रकाशित कणों एवं विभिन्न छन्द रश्मियों के पारस्परिक संयोग की प्रक्रिया पृथिवी एवं सूर्यादि लोकों के अन्दर समृद्ध होती है।

इसका छन्द निचृदष्टि होने से इसके छान्दस प्रभाव से सभी क्रियाएं तीक्ष्ण एवं व्यापक होती हैं।

इसका स्वर मध्यम होने से यह छन्द रश्मि विभिन्न लोकों के मध्य वर्तमान होकर विभिन्न छन्द रश्मियों व कणों के मध्य क्रियाशील रहती है।

आधिदैविक भाष्य

(पूषणम्) सृष्टि की प्रत्येक पालन, रक्षण आदि क्रियाएं (वनिष्णुना) संयोग-वियोग किंवा आकर्षण, प्रतिकर्षण, विस्फोटक एवं विभाजक आदि बलों के द्वारा समृद्ध होती हैं। {वन संभक्तौ, वनु याचने, याचु वधकर्मा (निघं.२.१६)} (अन्धाहीन्) {अन्ननाम (निघं.२.७), अन्नं वा अन्धः (जै.१.३.३), अन्धो रात्रिः (तां.६.१.७), अहर्वा अन्धः (तां.१२.३.३; जै.१.११६)}। अहिः = द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०)} विभिन्न संयोज्य प्रकाशित व अप्रकाशित कण (स्थूलगुदया) {गुदा = प्राणो वै गुदः (श.३.८.४.३)} यहाँ 'गुदः' पद को 'गुदा' रूप में लिखना छान्दस प्रयोग है। व्यापक रूप से फैले हुए विभिन्न प्राणों के द्वारा अपनी विभिन्न क्रियाओं को सम्यक् रूप से कर पाते हैं। (सर्पान्) {इमे वै लोकाः सर्पास्ते हानेन सर्वेण सर्पन्ति यदिदं किं च (शत.७.४.१.२५) (छन्दांसि वै सर्वे लोकाः - जै.१.३३२), देवा वै सर्पाः (तै.ब्रा.२.२.२.६)} सभी प्रकार की छन्द रश्मियां एवं दृश्य कण वा तरंगें (गुदाभिः) विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा अपनी क्रियाओं को करने में समर्थ होती हैं।

(विहृतः) विशेष रूप से कुटिल चाल चलने वाले सभी प्रकार के लोक एवं कण (आन्त्रैः) विभिन्न प्रकार की छन्द व प्राण रश्मियों के द्वारा निर्मित मार्गों पर उन्हीं रश्मियों के द्वारा प्रेरित होकर सम्यग्रूपेण सुरक्षित गमन करते हैं।

(अपः) विभिन्न तन्मात्राएं एवं प्राणादि रश्मियां (वस्तिना) {वस्त आच्छादयति सा वस्तिः (उ.को.४. १८१)} सूत्रात्मा एवं बृहती छन्द आदि रश्मियों के द्वारा सम्यक् स्वरूप को प्राप्त करके अपनी नाना क्रियाओं को सम्यग्रूपेण सम्पन्न करती हैं।

(वृषणम्) विभिन्न वृषा अर्थात् पुरुष रूप में कार्य करने वाली रश्मियां किंवा कण अपने अन्दर व्याप्त (अण्डाभ्याम्) रेतः सेचन में समर्थ अर्थात् तेजोरूप प्राण व अपान किंवा प्राणादि रश्मियों के द्वारा ही अपने संयोगादि कर्मों को करने में समर्थ होती हैं।

(वाजिनम्) {छन्दांसि वै वाजिनः (गो.उ.१.२०), इन्द्रो वै वाजी (ऐ.३.१८)} वेगवान् एवं बलवान् विद्युत् एवं विभिन्न कण वा छन्द रश्मियां (शेपेन) {ग्रावा शेपः (तै.सं.७.५.२५.२) (ग्रावा = प्राणा वै ग्रावाणः - शत.१४.२.२.३३; बार्हता वै ग्रावाणः - शत.१२.८.२.१४, जागता वै ग्रावाणः (कौ.२६.१)। शेपः = शपते स्पृशतिकर्मणः (निरु.३.२१)} स्वयं को स्पर्श करने वाली प्राण एवं बृहती आदि छन्द रश्मियों के द्वारा अपने कार्यों को करने में समर्थ होती हैं। इसके साथ ही शुनःशेप नामक रश्मियों के द्वारा सूर्यलोक का केन्द्रीय भाग समृद्ध होता है।

(प्रजाम्) विभिन्न उत्पन्न रश्मि वा कण आदि पदार्थ (रैतसा) उनको उत्पन्न करने वाली विभिन्न रश्मियों के द्वारा क्रियाशील होते हैं।

(चाषान्) अवशोषित होने वाले कण वा रश्मि आदि पदार्थ (पित्तेन) {पित्तम् = तेजः (म.द.य.भा.१.७. ६)} उसे तेज वा बल प्रदान करने वाली रश्मियों के द्वारा ही अपनी क्रियाओं को सम्पादित कर पाती हैं।

(प्रदरान्) {प्रदरान् = प्र+दृ विदारणे, उदरावयवान् (म.द.भा.)} अवकाशरूप आकाश में स्थित विभिन्न पदार्थ (पायुना) {पायुः = अन्तरिक्षं पायुः (तै.सं.७.५.२५.२)} आकाश तत्त्व के द्वारा आवृत्त रहकर उसके ही द्वारा नाना बलों को प्रदर्शित व अनुभव कर पाते हैं।

(कूश्मान्) इस सृष्टि के विभिन्न पदार्थों में नियन्त्रण की क्रियाएं (शकपिण्डैः) {शक उदकनाम (निघं.१. १२)} अपने सिंचन रूपी कर्म के द्वारा उत्पन्न संघनित कणों (mediator particles) के द्वारा ही संचालित होती हैं। ध्यातव्य है कि यहाँ प्रथम मंत्र से 'स्वाहा' पद की अनुवृत्ति है।

भावार्थ- इस सृष्टि में विभिन्न प्रकार के पदार्थ अपने पृथक्-२ कर्मों को पृथक्-२ कणों वा रश्मि आदि पदार्थों के सहयोग से ही करने में समर्थ होते हैं। विद्वानों को इन सब क्रियाओं और पदार्थों को जानना चाहिए।

ऋचा का सृष्टि पर प्रभाव- इस छन्द रश्मि का सृष्टि पर व्यापक प्रभाव होता है। इसके प्रभाव से विभिन्न कणों व रश्मियों के मध्य कार्यरत विभिन्न प्रकार के बलों, गतियों, सुरक्षित मार्गों, नाना उत्पादन कर्मों, सतत क्रियाशीलता आदि के लिए नाना प्रकार के कण, प्राण व छन्दादि रश्मियां एवं आकाश आदि तत्त्व सक्रिय होते हैं। यह रश्मि पूर्व से हो रहे नाना कर्मों को अच्छी प्रकार सम्पन्न करने में व्यापक सहयोग करती है।

आध्यात्मिक भाष्य

(पूषणम्) सबके पालन, पोषण व रक्षण के मुख्य हेतु परमात्मा को (वनिष्ठुना) पुरुषार्थपूर्वक प्रार्थना एवं अपने समस्त दुर्गुण-दुर्व्यसनों को नष्ट करके ही योग साधक प्राप्त करने में समर्थ हो पाता है।

(अन्धाहीन) {अहिः = समस्तविद्यासु व्यापनशीलः (ईश्वरः) (म.द.य.भा.५.२३)} अन्ध अर्थात् अन्न रूप किंवा जीवों के द्वारा सदैव नमन करने योग्य अहिरूप अर्थात् समस्त विद्याओं से समृद्ध परमेश्वर (स्थूलगुदया) शरीर व सृष्टि में व्याप्त प्राणापानोदान आदि के सम्यक् नियन्त्रण अर्थात् प्राणायामादि तप के द्वारा परिपक्व योगसाधना द्वारा प्राप्त करने में सुगम होता है।

(सर्पान्) ब्रह्माण्ड में व्याप्त विभिन्न गायत्र्यादि छन्द रश्मियों को (गुदाभिः) भी प्राणों पर नियन्त्रणपूर्वक योगाभ्यास के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

(विद्वत्) विभिन्न प्रकार के कुटिल मार्गों एवं अविद्यादि क्लेशों को (आन्त्रैः) वेदविद्या किंवा वेदविद्या के मूल उपदेष्टा परमपिता परमात्मा अथवा योगविद्या में निष्णात आचार्य के प्रति समर्पण व सम्मान के द्वारा विनष्ट किया जा सकता है।

(अपः) विभिन्न प्रकार के उत्तम गुण एवं कर्मों को (वस्तिना) नाभि के अधोभागस्थ उपस्थेन्द्रिय के पूर्ण संयम एवं तप व स्वाध्याय से प्राप्त सद्गुणों के आच्छादन के द्वारा सम्यग्रूपेण प्राप्त किया जा सकता है।

(वृषणम्) सब सुखों की वर्षा करने वाला परमेश्वर (आण्डाभ्याम्) {अण्डः = अमन्ति संप्रयोगं प्राप्नुवन्ति येन सः अण्डः (उ.को.१.११४)} सकल ब्रह्माण्ड एवं शरीररूपी पिण्ड के सम्यक् विज्ञान के द्वारा ही जाना जा सकता है।

(वाजिनम्) विभिन्न बल एवं गतियों का मूल कारण परमेश्वर (शेपेन) विविध सांसारिक विषयों को सतत स्पर्श करने के स्वभाव से युक्त विभिन्न इन्द्रियां व मन के निग्रह के द्वारा प्राप्त होता है।

(प्रजाम्) {प्रजानाम् = सर्वेषां व्यवहाराणाम् (म.द.य.भा.३४.५)} योग साधनादि विभिन्न मोक्षसाधक व्यवहार (रेतसा) {रितः = वाग् रेतः (शत.१.७.२.२१), वागु हि रेतः (शत.१.५.२.७)} वाग् अर्थात् प्रणव के जप एवं ध्यान आदि के द्वारा सम्यग्रूपेण सिद्ध होते हैं।

(चाषान्) भक्षणीय अर्थात् विनष्ट करने योग्य काम, क्रोध, लोकादि आन्तरिक शत्रु किंवा सेवनीय ब्रह्मानन्द रस (पित्तेन) ब्रह्मवर्चसु रूपी तेज के द्वारा क्रमशः नष्ट किंवा प्राप्त होते हैं।

(प्रदरान्) {उदरः सदः (मै.३.८.८; क.४०.३)} परमेश्वर के आनन्द धाम (पायुना) विभिन्न दोषों से रक्षा करने वाले गायत्री जप-उपासनादि कर्मों के द्वारा प्राप्त होते हैं।

(कूश्मान्) मन-इन्द्रियादि पर नियन्त्रण (शकपिण्डैः) ईश्वरोपासनादि से प्राप्त सामर्थ्यों के द्वारा सम्यग्रूपेण स्थापित हो सकता है।



भावार्थ- प्रत्येक योगसाधक को चाहिए कि वह योग के विभिन्न अंगों की साधना करके अपने अविद्यादि क्लेशों एवं काम, क्रोधादि शत्रुओं को जीतकर अपनी योगसाधना को परिपुष्ट करे। ऐसा योगी ब्रह्माण्डस्थ वेद की ऋचाओं को सुगमता से ग्रहण करने के साथ-२ ब्रह्म साक्षात्कार करके निर्भ्रान्त एवं सम्पूर्ण विज्ञान से युक्त होकर ब्रह्मानन्द धाम को प्राप्त होता है।

विशेष ज्ञातव्य- अन्त में मैं वेद पर लेखनी उठाने वालों को सावधान करना चाहूंगा कि केवल संस्कृत व्याकरण अथवा शब्दकोषों के आधार पर वेदार्थ करना सम्भव नहीं है। इसके लिए निरुक्त, विविध ब्राह्मण ग्रन्थ, वेद की विभिन्न शाखाओं, आरण्यक, आश्वलायनादि श्रोतसूत्र एवं छन्दशास्त्र के विस्तृत अध्ययन के साथ-२ ईश्वर प्रदत्त उच्च कोटि की ऊहा व तर्क, शुद्ध अन्तःकरण एवं ईश्वर की निष्काम व यथार्थ उपासना अनिवार्यतः अपेक्षित है। मैं वेद अथवा इसके ऋषि दयानन्द कृत भाष्य पर मिथ्या व्यंग्य करने वाले इस्लामी बन्धुओं से कहना चाहूंगा कि **कांच के घर में बैठकर वेदरूपी सुदृढ़ महल पर पत्थर फेंकना बुद्धिमानी नहीं है।** मैंने कुरान के तीन संस्करणों को पढ़ा है। आप भी अच्छी प्रकार बुद्धिपूर्वक पढ़ लीजिये। यह बात स्मरणीय है कि हम सब हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि बाद में, पहले सभी मानव हैं। हम सबको मिलकर एक सत्य धर्म की खोज करने का प्रयास करना चाहिए। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आदि में ही मिलता है, न कि अब से एक-दो हजार वर्ष पूर्व। आप कृपया अपने मजहब की जड़ को पहचानने का प्रयास करें। तदुपरान्त ही वेद पर अंगुली उठाएं। हम तो वेद के आधार पर वर्तमान भौतिकी की गम्भीर व अनसुलझी समस्याओं का समाधान करने की क्षमता रखते हैं, क्या सम्पूर्ण इस्लामी जगत् में ऐसा कोई कुरान का जानकार है, जो कुरान के आधार पर ऐसा दावा कर सकता हो? आएं, हम सब एक परमात्मा की सन्तान बनने का प्रयास करके मानव एकता का मार्ग अपनाएं न कि विघटनकारी प्रयासों से मानवता को आहत करें।

- आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक, वैदिक वैज्ञानिक
अध्यक्ष, श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास

वैदिक एवं आधुनिक भौतिक विज्ञान शोध संस्थान

वेद विज्ञान मन्दिर

भागलभीम, भीनमाल, जिला-जालोर

(राजस्थान) भारत पिन- 343029

Ph.: +912969 292103, Mo.: +919414182173,+917424980963

 /swamiagnivrat  swamiagnivrat@gmail.com  http://vaidicscience.com

 /AgnivratNaishthi  /naishthi